स्वामी
...ी जय हो। प्राणियों में सद्भावना हो।
विश्व का कल्याण हो।
...हर महादेव॥
...करपात्रीजी महाराज
की
संक्षिप्त जीवनी
लेखक :—
श्री सन्त शरण वेदान्ती
धर्मसंघ, हाजीपुर
प्रकाशक :—
बिहार प्रान्तीय रामराज्य परिषद्,
वैशाली।
सहायतार्थ पचास पैसे

एक परिचय :—

युगावतार पूज्य स्वामी
श्री करपात्रीजी महाराज की जीवनी

प्रतापगढ़ जिले में एक छोटा-सा ग्राम है—भटनी। वहाँ एक सरयू-पारीण ब्राह्मण परिवार रहता है—पं० रामनिधि ओझा का।

ओझा जी के पिता किसी समय गोरखपुर जिले के ओझौली ग्राम के निवासी थे, किन्तु कालांतर में काला कांकर के राजा साहब उन्हें वहाँ से भटनी ले आये और तभी से यह परिवार यहाँ ही रहने लगा है।

पं० रामनिधि ओझा के तीन पुत्र हुए। इनमें सबसे छोटे हरनारायण थे। इनका जन्म सम्वत् १९६४ की श्रावण-शुक्ला द्वितीया, रविवार को हुआ था। ईसवी सन् १९०७ में।

ओझा परिवार सनातन धर्म का कट्टर अनुयायी था और पुरातन सभ्यता तथा संस्कृति का बड़ा प्रेमी भी। अतः ओझाजी ने हरनारायण को संस्कृत पढ़ाने का ही निश्चय किया। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त हुई तो उन्होंने उसे घर ही प्रथमा के पाठ्यक्रम का अध्यापन प्रारम्भ करा दिया।

हरनारायण पढ़ने-लिखने में तेज थे, किन्तु उनकी प्रकृति बचपन से ही कुछ विलक्षण-सी थी। वह सांसारिक पदार्थों से सदा ही विरक्त-से रहते थे और देर-देर एकांत में बैठा न जाने क्या सोचा करते थे?

कभी भी जी में आता तो घर से भाग निकलते। पिता और बड़े भाई खोजते फिरते। मिल जाने पर घर ले आते, डांटते और डपटते भी। किन्तु बालक पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। वह इस प्रकार न जाने कितनी बार घर से भागे और पकड़ कर वापस लाए गए।

दिन प्रतिदिन बालक के हृदय में संसार की क्षण-भंगुरता अपना स्थान दृढ़ करती गयी और हरनारायण घर में रहता हुआ भी वैरागी-सा ही हो गये।

इस समय उनकी अवस्था लगभग ९ वर्ष की थी।

विवाह और गृह त्याग

प्रतापगढ़ की देहातों में बाल-विवाह का चलन था। लड़की वालों का कहना था कि उन्हें उत्तम कुल के लड़के बड़ी कठिनता से मिलते हैं अतः वे ५-५ और ७-७ वर्ष के बालकों को ही घेर लेते थे।

हरनारायण ९ वर्ष के हो गये थे, अतः ओझा जी के द्वार पर भी लड़की वालों का आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

पिता ने सोचा कि विवाह हो जायगा तो सम्भवतः लड़का घर गृहस्थी के चक्कर में फँस जाय और फिर बार-बार घर से भागना छोड़ दे, अतः उन्होंने उसका विवाह पक्का कर दिया।

घर में बाजे बजे, निकट के ही एक ग्राम खंडवां में बारात गयी और हरनारायण अपने साथ एक नन्हीं-सी बहू लेकर घर लौट आये।

विवाह तो हो गया किन्तु इससे उस वैरागी बालक के हृदय में राग उत्पन्न न हो सका। संसार के प्रति उसकी विरक्ति पहले

के जैसी ही बनी रही और एकदिन अवसर मिला तो हरनारायण ने फिर लुटिया-डोर संभाली और घर से निकल भागा, किन्तु पिताजी ने फिर जा पकड़ा।

'नहीं पिताजी! अब मैं घर नहीं जाऊँगा। मैं जहाँ जाना चाहता हूँ मुझे जाने दीजिए' हरनारायण ने कहा।

किन्तु पिताजी न माने। उन्होंने कहा—'वंश की रक्षा के लिए मैं तेरी एक संतान चाहता हूँ हरनारायण! उसे देकर तू चले जाना। फिर मैं नहीं रोकूँगा।'

और पुत्र ने पिता की यह बात मान ली!

अब वह गृहस्थ बन गये और घर की चहार दिवारी में एक बन्दी के समान जीवन व्यतीत करने लगे। किन्तु उनकी दैनिक-चर्या वही पुरानी ही रही। पूजन, भजन तथा सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन उसी प्रकार नियमित रूप से चलता रहा।

हरनारायण की अवस्था १७ वर्ष के लगभग थी कि उनके घर भगवती स्वरूपा एक कन्या ने जन्म लिया।

'बस, पिताजी की अभिलाषा पूरी हो गयी' हरनारायण ने सोचा—'अब इस घर में मेरा क्या काम?' उसने फिर चलने की ठानी।

—पिता सामने खड़े थे।

—'बस, अब मत रोकना पिताजी!' हरनारायण ने कहा—'अब यह घर मुझे फाड़ खाने के लिये दौड़ा आता है। मैं कब का बन्दी-सा पड़ा हूँ घर के इस बन्दीखाने में, अब तो मुझे मुक्त ही कर दीजिये।'

पिता के पीछे ही माँ खड़ी थी और उनके पीछे नवजात बालिका को गोद में लिए पत्नी।

पिता निरुत्तर हो गये किन्तु अब माता सामने थी।

तुम मेरे धर्म मार्ग में बाधक मत बनो माँ! हरनारायण ने कहा—'अपने आँसुओं को रोक लो; मुझे जाने दो।'

किन्तु तेरे बिना मैं जीवित कैसे रह सकूँगी हरनारायण! माँ ने रोते हुए कहा!

जैसे आचार्य शंकर की माँ रह गयी थी, मेरी माँ! हरनारायण ने उत्तर दिया।

और अब वह आगे बढ़ा तो बालिका को हाथों में लिये पत्नी विलख उठी—'और मुझे कहाँ छोड़े जाते हो' उसने कहा।

'इन माता-पिता के चरणों में' हरनारायण ने उत्तर दिया—यह तेरे भी तो माता-पिता ही हैं, इनकी सेवा करना।

और सारे परिवार को रोता छोड़कर युवक घर से चल दिया, कभी भी फिर उस घर के स्वामी के रूप में वहाँ वापस न लौटने के लिये। माता-पिता का स्नेह भूलकर, पत्नी का मोह त्याग कर और नन्हीं-सी कोमल बालिका के आकर्षण को तिनके के समान तोड़कर वह चला गया।

भला जगतपिता स्वयं जिसे अपनी गोद में उठाने के लिये अपने अनन्त हाथ पसारे खड़े हों वह किसके रोके रुक सकता था?

अध्ययन

बन्धनों से मुक्त नवयुवक बढ़ा जा रहा था, आगे ही आगे वह कहाँ जा रहा था इसका निश्चय तो वह स्वयं भी नहीं कर

पाया था कि सहसा ही उसने अपने को प्रयाग के समीप कुरेश्वर ग्राम में एक विशाल वट वृक्ष की छाया में बैठे एक ढाढ़कोपीनधारी ध्यानमग्न महात्मा के सम्मुख खड़े पाया।

यह महात्मा थे श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य हुये।

तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। स्वामीजी ने आँखें खोलते हुये कहा— 'तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।'

और युवक हरनारायण पुण्यतोया गंगा के किनारे-किनारे आगे बढ़ा।

अब वह नरवर में था, पूर्वकालीन गुरुकुलों के जैसे सांगवेद विद्यालय के स्वच्छ वातावरण में जहाँ तपोमूर्ति नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री श्री जीवनदत्तजी महाराज की अध्यक्षता में देववाणी संस्कृत का प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार अध्यापन का कार्य चल रहा था।

यहीं पर उन दिनों पंडित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज भी विराजमान थे जो षड् दर्शनाचार्य थे। हरनारायण ने उन्हें ही अपना गुरु वरण किया। उनसे उन्होंने प्रथम ११ महीने तक व्याकरण शास्त्र पढ़ा और तदुपरान्त १३ महीने तक दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया।

स्वामी अच्युत मुनि जी के अनुरोध पर स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी नरवर को त्याग कर वहाँ से ७ कोस की दूरी पर "भृगु क्षेत्र" में आये तो हरनारायण भी उनके साथ ही वहाँ चले आए।

अब वह अध्ययन के साथ ही साथ भागवत का प्रवचन भी करने लगे थे।

अब उनका नाम था "हरिहर चेतन।"

परमहंस

हरिहर चेतन बचपन में तो वैरागी–से थे ही किन्तु विद्याध्ययन के दिनों में भी उनकी वृत्ति जैसी की तैसी ही बनी रही।

घोर जंगल में उत्तराखण्ड की हिम से आच्छादित हिमालय की तलहटियों में तरुण तपस्वी हरिहर चेतन अपनी साधना में लीन था। अपनी देह की ममता त्याग कर तथा अपनी भूख और प्यास को हनन करके वह तपस्या कर रहा था। तीन वर्ष की कठोर साधना के पश्चात उसकी तपस्या सफल हुई। उसे आत्मा का दर्शन हुआ।

करपात्री

हरिहर चेतन अब एक परमहंस के रूप में आश्रम में लौटे तो उनके मुख पर अलौकिक आभा थी। प्रसन्नता तो मानों उनके रोम–रोम से फूट पड़ रही थी।

साथियों ने देखा तो गद्गद हो उठे। उन्होंने खुले हृदय से उनका स्वागत किया। युवक वैरागी ने सबसे पहले आगे बढ़कर गुरुदेव की पूजा की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

हरिहर चेतन अपनी साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे। अब वह केवल एक कोपीन धारण करते थे, शौच जाने के लिये केवल एक हाँडी पास में रखते थे। पवित्र, सदाचारी ब्राह्मणों के घर भिक्षा मांगते और हाथ पर रखकर

ही भोजन करते थे। भोजन के सम्बन्ध में भी वह बड़े कठोर नियमों का पालन करते थे! हर किसी कूप का तो जल भी ग्रहण नहीं करते थे! करों में ही भोजन करने के कारण अब उन्हें सभी लोग 'करपात्री' कहने लगे थे।

अभिनव शंकराचार्य

करपात्रीजी एकबार नरवर से प्रयाग आये तो वहाँ उन्होंने फिर स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती के दर्शन किये और उनके त्यागमय जीवन से वह प्रभावित हुये।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने भी इनकी विद्वत्ता को आंका किंतु साथ ही उन्होंने यह भी अनुभव किया कि 'दंड ग्रहण न करने के कारण सन्यासियों में जो गौरव उन्हें मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है।' अतः उन्होंने करपात्रीजी से दण्ड ग्रहण करने के लिए कहा। स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी ने भी जोर दिया किन्तु करपात्रीजी इसके लिए राजी न हुए।

एकदिन एकान्त में सुअवसर पाया तो गुरुदेव ने करपात्री जी से कहा— 'आज देश में दण्डी सन्यासियों में विद्वानों की कमी होती जा रही है, अतः आप जैसे विद्वानों को दण्ड ग्रहण कर एक आदर्श स्थापित करना ही चाहिए।

इसपर करपात्रीजी ने दण्ड ग्रहण करना स्वीकार कर लिया और श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी के कर-कमलों द्वारा ही सन् १९३१ में, लगभग २४ वर्ष की अवस्था में आपने विधिवत दंड ग्रहण किया।

धार्मिक जगत 'करपात्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती की जय' के निनाद से गूँज उठा। उसने एक 'अभिनव शंकराचार्य' के रूप में आपके दर्शन किये।

धर्मप्राण भारत के लिए कितना महान् दिवस था वह।

धर्मसंघ

दण्डग्रहण के पश्चात् स्वामीजी सन्यासियों के लिये मान्य कठिन नियमों का पालन करते हुए काशी से ऋषिकेश तक गंगा तटपर आत्म चिंतन में निरत रहने लगे। किन्तु प्रभु को तो आपसे कुछ और कार्य लेना था, फलतः इनके अंतःकरण में लोक कल्याण की आत्म प्रेरणा जागृत हुई।

'धर्म ग्लानि अधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति और धर्म संस्थापन हो' इस शुद्ध संकल्प से प्रभु प्रार्थना की जाने का कार्यक्रम बनाया उन्होंने और लगभग दो वर्षों तक लिख लिख कर ही यह सिद्धान्त नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में बांटा जाता रहा।

१९३७ में हरिद्वार महाकुम्भ के अवसर पर इस सिद्धांत का व्यापक प्रचार हुआ। स्वामी करपात्रीजी मेले से कई मील दूर एक झोपड़ी में ठहरे तथा वहीं प्रवचन करते रहे। वहाँ स्वामी जी दैनिक ८-८ घंटे बोलते थे किन्तु फिर भी दस-दस हजार व्यक्तियों की भीड़ हरसमय जमी रहती थी और साधारण जनता ही नहीं अपितु भारत के चोटी के विद्वान उन उपदेशों को श्रवण कर स्वामी जी की विद्वता पर मुग्ध होते थे।

अतः १९९७ विक्रमी (सन् १९४०) में विजय दशमी के शुभ दिवस 'धर्मसंघ' की स्थापना हुई।

प्रचार

धर्मसंघ संगठन को सुदृढ़ और व्यापक बनाने के लिए सहयोगी एकत्रित करने के उद्दे से अब स्वामीजी की यात्रा प्रारंभ हुई। हरिद्वार से गंगासागर तक और वहाँ से पुष्कर-राज तक उन्होंने पैदल यात्रा की। नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में स्वामी जी ने सनातन वैदिक धर्म का सन्देश सुनाया और 'धर्मसंघ' की शाखाएँ स्थापित कीं।

स्वामीजी ने अब अमरनाथ की पैदल यात्रा की। सारा मार्ग धर्म जय-जयकार से गूँज उठा।

स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी का निर्वाण हुआ तो एक विशेष आयोजन सम्पन्न हुआ। करपात्रीजी के अतिरिक्त पूज्य स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी, श्री उड़िया बाबाजी तथा दूसरे अन्य अनेक सिद्ध महात्मा एकत्रित हुए। कई दिनों तक सत्संग चलता रहा।

श्री उड़िया बाबाजी सामूहिक रूप से प्रणव सहित संकीर्तन कराते थे, करपात्रीजी ने इसका विरोध किया और वहाँ इस सम्बन्ध में कई भाषण भी दिए।

प्लेटफार्म के साथ ही साथ स्वामीजी प्रेस की शक्ति से भी अपरिचित न थे। अतः उन्होंने काशी से पहले मासिक सन्मार्ग का प्रकाशन कराया और फिर साप्ताहिक 'सिद्धान्त' का। बाद में काशी के सन्मार्ग ने दैनिक का रूप लिया तथा कलकत्ते से भी दैनिक सन्मार्ग निकलने लगा।

अनन्य सहयोगी

धर्मसंघ ने अ०भा० रूप ग्रहण किया तो उसका कार्यक्रम एवं प्रचार भी बढ़ा। महामहोपाध्याय पं. गिरधरशर्मा चतुर्वेदी,

शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य आदि अनेकों भारत प्रसिद्ध विद्वानों का सहयोग पूज्य श्रीस्वामीजी को प्राप्त हुआ। किन्तु धर्म प्रचार के उनके कार्य में जो उन्हें अनन्य सहयोगी के रूप में प्राप्त हुए वह थे पूज्यपाद श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज इन वीतराग, तपोमूर्त्ति महात्मा का धर्मसंघ ने अपना स्थायी सभापति निर्वाचित किया, श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी का पूर्ण सक्रिय सहयोग प्राप्त होते ही धर्मसंघ को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

और तब से वे दोनों श्री स्वामी करपात्रीजी तथा श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी—एक प्राण दो देह की भाँति धर्मसंघ के द्वारा धर्म की सेवा में संलग्न थे। यदि सच पूछा जाय तो आप दोनों की लगन और त्याग के कारण ही धर्मसंघ को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

कालान्तर में पूज्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज को भारत के विद्वान समाज ने ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य घोषित किया।

यज्ञ युग की झलक

धर्मसंघ की शाखा सभाओं में वृद्धि हुई कि एक छोर से दूसरे छोर तक समस्त भारत में धार्मिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों की धूम-सी मच गई।

सोनपत, मेरठ, देहली, कानपुर, काशी, लखनऊ, उदयपुर, बीकानेर आदि प्रमुख नगरों में अनेक महान् यज्ञों के आयोजन विश्वकल्याण की कामना से सम्पन्न हुये।

प्रचार के आधार

धर्म विरोधी बिल

हमारे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी भी शासक को नहीं है, स्वामीजी ने घोषणा की अतः प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह इन बिलों के विरोध में अपनी आवाज उठाये।

स्वामीजी के अदम्य उत्साह और कार्यशीलता से ही वे दोनों बिल सरकारी फाइलों के नीचे दबे हुए सिसकते ही रह गये। अन्त में बिल जिस रूप से सरकार चाहती थी उस रूप में पास न हो सका।

गोहत्या

गाय केवल एक उपयोगी पशु ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति में वह हमारी माँ कही गयी है अतः वह अवध्य है। ऐसी परिस्थिति में भारत की पुण्य भूमि पर गोवध होता हो वह सचमुच ही एक दुःख की बात है।

स्वामीजी ने इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया तो उनकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठी। उन्होंने अपने कार्यक्रम में गोरक्षा को भी सम्मिलित कर लिया और साथही यह दृढ़ संकल्प भी किया कि जब तक भारत की पवित्र भूमि से गोवध का कलंक दूर नहीं हो जाता तब तक यदि मोक्ष भी मिले तो उसे स्वीकार नहीं करना है। असंख्य व्यक्तियों को स्वामीजी ने गोपालन के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु उन्होंने अनुभव किया कि जबतक सरकारी स्तर पर गोवध बन्द नहीं होगा;यह समस्या हल होना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है।

अतः स्वामीजी अपने प्रचार में स्थान-स्थान पर अपने व्याख्यानों, वक्तव्यों, लेखों तथा पत्रों द्वारा सरकार से गोवध बन्द कर देने का अनुरोध भी करने लगे। अबतक यह प्रचार जारी है।

पूज्य स्वामीजी ने भारत विभाजन के विरोध में अखंड भारत का आन्दोलन भी संचालित किया जिसमें हजारों व्यक्ति जेल गये।

अन्य संस्थाएँ : शिक्षा-मंडल

श्री स्वामीजी ने धर्मसंघ के तत्त्वावधान में ही धर्मसंघ शिक्षा-मंडल की स्थापना की। काशी, दिल्ली, वृन्दावन, हिसार, बिठुर, मुजफ्फरपुर आदि अनेक नगरों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक कई धर्मसंघ विद्यालयों की स्थापना की। उनका स्वतंत्र पाठ्यक्रम बनाया गया परीक्षाओं की व्यवस्था की।

सनातनी दल

अभ्युदय का धारण जिससे हो वही धर्म है और अभ्युदय की प्राप्ति जिससे हो वही नीति अतः धर्म और नीति का परस्पर बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। नीति से ही शास्त्र और धर्म प्रतिष्ठित होते हैं, नीति से ही सामाजिक सुव्यवस्था होती है तथा शान्ति होने पर ही धर्म के अनुष्ठान में सुविधा होती है और धर्म की भावना फैलने से ही नीति भी कार्यान्वित एवं सफल होती है। इन्हीं विचारों को आगे रखकर पूज्य करपात्री जी ने राजनीति में प्रवेश करने के लिये धार्मिक जनता का आह्वान किया।

स्वामीजी ने देखा कि पाश्चात्य भावापन्न धर्म शून्य व्यक्ति ही राजनीति के क्षेत्र पर अधिकार जमाये बैठे हैं और धार्मिक समाज "कोऊ नृप होहिं हमें का हानि" का सिद्धान्त अपनाये बैठा है और उसी का परिणाम है कि व्यवस्थापिका परिषदों में एक के बाद दूसरे धर्म विरोधी बिल उपस्थित होकर कानून के रूप में परिणत हो रहा है।

साथ ही स्वामीजी ने यह भी अनुभव किया कि अब केवल बाहर विरोध करने से ही काम चलनेवाला नहीं है। एसेम्बलियों की कुर्सियों पर बैठे अपने ही गैरों के समर्थक हो रहे हैं। अतः क्रियात्मक रूप से राजनीति में प्रवेश करने का अनुरोध किया और इस कार्य के संचालन के लिये २ सितंबर १९४५ को उन्होंने अ० भा० सनातनी दल का संघटन किया बाद में इसी दल ने अ० भा० रामराज्य परिषद् का रूप लिया, जो पिछले २० वर्षों से भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण पार्ट अदा कर रही है।

धर्म युद्ध

कथित राष्ट्रीय नेताओं ने मुसलमानों की पृथक राष्ट्र की मांग के आगे घुटने टेक दिये और केन्द्र के अन्तरिम सरकार स्थापित हो गई अब तो धर्म विरोधी बिलों में और भी अधिक प्रगति आई। हिन्दू समाज के लिए साक्षात कोढ़ के जैसे 'हिन्दू कोड' तो एसेम्बली के सामने पहले से था ही अब सुधारकों को इस प्रकार के बिल शीघ्रतापूर्वक कानून के रूप में परिवर्तित कराने में सरलता दीख पड़ने लगी।

अनेक वर्षों के सतत् प्रयत्नों से यद्यपि जनता में इन बिलों के प्रति प्रबल विरोधी भावनाएँ उत्पन्न हो चुकी थी किन्तु फिर

भी सरकार जनता की उन भावनाओं की ओर कोई भी ध्यान देती नहीं दीख पड़ रही थी।

ऐसी परिस्थिति में १९ जनवरी, सन् १९४७ को पूज्य स्वामी जी ने बम्बई में 'धर्मयुद्ध' की घोषणा कर दी।

अतः २६ अप्रैल, १९४७ को स्वामीजी ने एसेम्बली के सामने 'भारत अखंड हो', 'गोवध बन्द हो', 'अधार्मिक बिल रद्द', 'मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित रहे', 'विधान शास्त्रीय हो', ये पाँच मांगें उपस्थित करते हुये धर्मयुद्ध का श्रीगणेश कर दिया।

यह धर्मयुद्ध लगभग ९ मास तक चलता रहा जिसमें समस्त देश के अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों ने भी भाग लिया। लगभग पाँच हजार धर्मवीर जेल गये अथवा जंगलों में डाले गये। गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य स्वामी कृष्णानन्द तथा स्वामी मुकुन्दाश्रम जी इन तीन महात्माओं का बलिदान भी हो गया। किन्तु सर-कार टस से मस न हुई। हाँ, जनता का उग्र विरोध देखकर उसने स्वामीजी को अवश्य मुक्त कर दिया।

नोआखाली में

देश की पुकार हो या धर्म की, प्रश्न राजनैतिक हो या सामाजिक, करपात्रीजी लोक कल्याण से सम्बन्धित किसी भी कार्य में पीछे नहीं रहे हैं। अक्तूबर १९४६ में पाकिस्तानी गुन्डों के संगठित प्रयत्नों के फलस्वरूप नोआखाली में हिन्दुओं का व्यापक विनाश हुआ, बलात धर्म परिवर्त्तन हुए, देव मन्दिर, तर्थस्थान भ्रष्ट किये गये, स्वामीजी से यह सब कुछ नहीं देखा गया। वह वहाँ पहुंचे और वहाँ से ग्राम-ग्राम में घूमे। उन्होंने

कुमिल्ला, चांदना, चौमुहानी, रामगंज, त्रिपुरा, दत्तपाड़ा, सोमपाड़ा, शाहगढ़, लक्ष्मीपुर, दलालगंज इत्यादि अनेकों स्थानों पर हिन्दुओं की परिस्थिति स्वयं अपने नेत्रों से देखी, सरकारी कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित किया, स्वयं सेवकों की नियुक्ति की, दीन-हीन दुखी और भयभीत हिन्दुओं के मन में 'राम नाम' के उपदेश से वीरता का संचार किया। धर्मसंघ की ओर से भारी मात्रा में कम्बल, वस्त्र, अन्नादि का वितरण कराया गया। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी इत्यादि के कैम्पों में चंडी यज्ञों का अनुष्ठान कराया, जप पाठ कराये, जनता से पीड़ितों को सहायता देने की अपील की तथा धर्म परिवर्तितों की पुनः शुद्धि की शास्त्रीय व्यवस्था की घोषणा की।

निर्भीक वक्ता

३० जनवरी १९४८ को गांधी जी का निधन हुआ और सरकार ने उनकी मृत्यु का बदला हिन्दू संस्थाओं से लिया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गुरुजी को बन्दी बना लिया गया। हिन्दू सभा को भी 'गांधी हत्या' से सम्बन्धित ठहरा कर समाप्त प्रायः कर दिया गया। हिन्दू नेता जेलों में बन्द कर दिये गये। ऐसे भीषणकाल में जब सरकार के विरुद्ध कुछ भी कहने का किसी में भी साहस न था। स्वामी जी बड़ी निर्भीकता के साथ सत्य का पक्ष लेकर सरकार की कड़ी आलोचना की। अपने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को निर्दोष बतलाते हुए उसके सदस्यों को मुक्त करने को जोरदार शब्दों में मांग की। इस समय सारे भारत में एक स्वामीजी ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी निर्भीक वाणी से सत्य का उद्घोष तथा निरपराधों के प्रति न्याय की मांग सुनाई देती थी।

स्वामी जी काशी में जन-सुरक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी बना लिये गये किन्तु कोई भी आरोप सिद्ध न होने के कारण वे कुछ समय पश्चात ही मुक्त कर दिये गये।

विभिन्न कार्य

स्वामी जी के दीक्षा गुरु ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य श्री १००८ श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती मई, १९५३ में कलकत्ते में ब्रह्मीभूत हुए। उन्हें काशी में जलसमाधि दी गई।

भारत के विद्वान्मंडल एवं साधु समाज ने एक मत से निर्णय किया कि पूज्यपाद परम वीतराग स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज को ही ज्योतिष्पीठ पर अभिषिक्त किया जाय। यद्यपि स्वामीजी उसके लिये तत्पर न थे किन्तु फिर भी श्री करपात्री जी के विशेष आग्रह पर आपने ज्योतिष्पीठ का आचार्य होना स्वीकार कर लिया।

१९५६ ई० में भारत की कथित सैक्यूलर सरकार द्वारा २५०० वीं बुद्ध जयंती मनायी गयी और जनता का करोड़ों रुपया उस पर व्यय किया गया। स्वामीजी ने कड़े शब्दों में खुलकर इस सरकारी तराजू के पसंगे की भी आलोचना की। सरकारी प्रचार करने एवं जनता की धार्मिक भावनाओं से स्वार्थ-सिद्धि करने के प्रयोजन से सरकार ने अ० भा० साधु समाज नामक संस्था को जन्म दिया। स्वामीजी ने इसका भी भंडाफोड़ करने और सरकारी साधु एवं सच्चे साधु का विभेद करने के प्रयोजन से 'अ० भा० साधु संघ' की स्थापना की और जनता को सरकारी साधु से सचेष्ट रहने का आदेश दिया।

सन् ५७ के दूसरे आम चुनाव आये तो स्वामी जी ने रामराज्य परिषद् की ओर से सैकड़ों प्रत्याशी खड़े किये। यद्यपि चुनावी हथकण्डों के प्रति अनुभवहीनता और धन एवं प्रचार साधनों की कमी के कारण आशानुकूल सफलता नहीं मिली किन्तु फिर भी मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में अनेक स्थानों पर परिषद् की शानदार विजय हुई। पिछले चुनावों में भी उक्त प्रान्तों में परिषद् को सफलता मिली।

जून ५७ में पंजाब में 'हिन्दी रक्षा आन्दोलन' चला। स्वामी जी ने तुरन्त घोषणा की कि 'पंजाबी गुरुमुखी का हम आदर करते हैं परन्तु उसे बलात् किसी पर लादा नहीं जा सकता' और फलतः स्वामी जी ने ३०१ सत्याग्रहियों एवं लगभग १५०० प्रदर्शनकारियों के साथ पंजाब के सचिवालय पर सत्याग्रह किया। उनके साथ अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् के प्रधान स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज तथा अ० भा० धर्मसंघ के कार्यकारी प्रधान श्री स्वामी परमानन्दजी ने भी सत्याग्रह में भाग लिया।

नास्तिकवाद एवं बौद्ध दर्शन के बढ़ते हुए सरकार द्वारा संरक्षित प्रचार को देखते हुए स्वामी जी ने वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिये एक और प्रयत्न किया। आपने कानपुर में जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज ज्योतिष्पीठ की अध्यक्षता में २ नवम्बर ५७ से १०-नवम्बर ५७ तक सर्व वैदिक शाखा सम्मेलन का आयोजन कराया। सनातनी, आर्य समाजी, बौध तथा ईसाई सभी विद्वानों ने इसमें भाग लिया और शास्त्रार्थ द्वारा १६ वैदिक विषय एवं सिद्धान्तों को निर्णीत करके उनकी घोषणा की गई। इसी प्रकार का सम्मेलन काशी

एवं कलकत्ता में भी हुए।

वर्षों से जिसकी रक्षा करते आ रहे थे, जिसके लिये स्वामी जी तथा उनके अनेकों अनुयाइयों ने कई बार जेल यात्रायें की थीं, आन्दोलन किये थे, प्रतिनिधि मण्डल भेजे थे, सरकार से उपासना पद्धति की स्वतन्त्रता की मांग की थी, आखिर १५ दिसम्बर ५७ को पुलिस एवं कानून के बल पर तथाकथित हरि-जनों ने घुसकर काशी विश्वनाथ मंदिर की अनादि मर्यादा को भ्रष्ट कर दिया। स्वामी जी ने कहा कि 'धार्मिक अत्याचार में कांग्रेसी शासन औरंगजेबी शासन से भी भयंकर है। सरकार द्वारा संविधान में प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता तथा धर्म निरपेक्षता की घोषणा केवल उपहास मात्र रह गई है'—और उन्होंने सभी विरोधियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी, परन्तु कोई माई का लाल आज तक इस 'सन्त' की चुनौती स्वीकार करने का साहस नहीं कर सका। फलतः स्वामीजी ने घोषणा की कि 'शिवरात्रि के अवसर पर काशी में दूसरे विश्वनाथ मन्दिर की स्थापना होगी।'

फलतः शास्त्रीय मर्यादा की प्रतिष्ठा हेतु नवीन विश्वनाथ मन्दिर की स्थापना एवं निर्माण मीरघाट (विश्वनाथ घाट) पर विधिवत् हुआ। इससे सनातन धर्मावलम्बी सज्जनों के लिये विशुद्ध उपासना गृह सुलभ हुआ। इसके साथ ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विदेशी शिक्षा दीक्षा से प्रभावित भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं दर्शन से अनभिज्ञ लोगों के पथ प्रदर्शनार्थ पूज्य श्री

स्वामीजी ने "मार्क्सवाद और रामराज्य" नामक ६०० पृष्ठों का एक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में आपने दर्शन एवं राजनीति के प्रति भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों का अनुपम तुलनात्मक वर्णन उपस्थित किया है। तुलनात्मक वर्णन के कारण तथ्य पूर्णतः स्पष्ट है।

गो हत्या का कलंक मिटाने के लिये श्री स्वामीजी ने १९४६ ई० से ही जो आन्दोलन एवं विविध कार्यक्रम चला रखा था, उसके लिये पुनः एकबार भारत के कोने–कोने में दौड़ा कर सभी सम्प्रदायों के आचार्यों, विद्वानों, मठाधीशों की सहायता से पूरी तैयारी कर सन् १९६६ में अभूतपूर्व ऐतिहासिक प्रदर्शन दिल्ली लोक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस प्रदर्शन में देश के कोने-कोने से दस लाख गोभक्तों ने भाग लिया।

विश्व कल्याणार्थ सचेतक के रूप में आप अपनी वाणी से तो सचेष्ट रहते हुए अपनी लेखनी से भी नित्य लिखते हुए समाज के सम्मुख ज्ञान का कोष बढ़ाते जाते हैं जिसकी मर्यादा विश्व प्रख्यात है। आपके ग्रन्थों के सम्मान हेतु उत्तर प्रदेश ने आपको पाँच हजार रुपये का एक पुरस्कार दिया जिस रकम को आपने तत्क्षण ही संस्कृत विश्वविद्यालय को दे दिया।

हिन्दू धर्म सम्बन्धी हमारे भ्रम को मिटाने के लिये 'विचार पीयूष' नामक ग्रन्थ प्रेस में है एवं वेद का एक विस्तृत भाष्य संस्कृत में और उसका अनुवाद हिन्दी में भी लिखा जा रहा है।

आप जैसे सिद्ध सन्त के दर्शन, उनके ग्रन्थों के अध्ययन एवं उनके वचनामृत पान से जीव परम कल्याण लाभ करता है।

स्थिति प्रलयं चैव भूतानामागतिं गति ।
वेत्ति विद्याऽविद्यां च स च भ

इस सूत्र के अनुसार इस कलियु
स्वरूप हैं ।

❀❀❀❀